**1960G Moolachar and its Author**

*Moolachar ki Maulikta aur uske rachayita* (Three articles in Anekant, 1960)

*Moolachar ki KundKund ke anya granthon ke sath samta*

*Moolachar ke Kartvat par naya prakash* and other articles about Moolachar

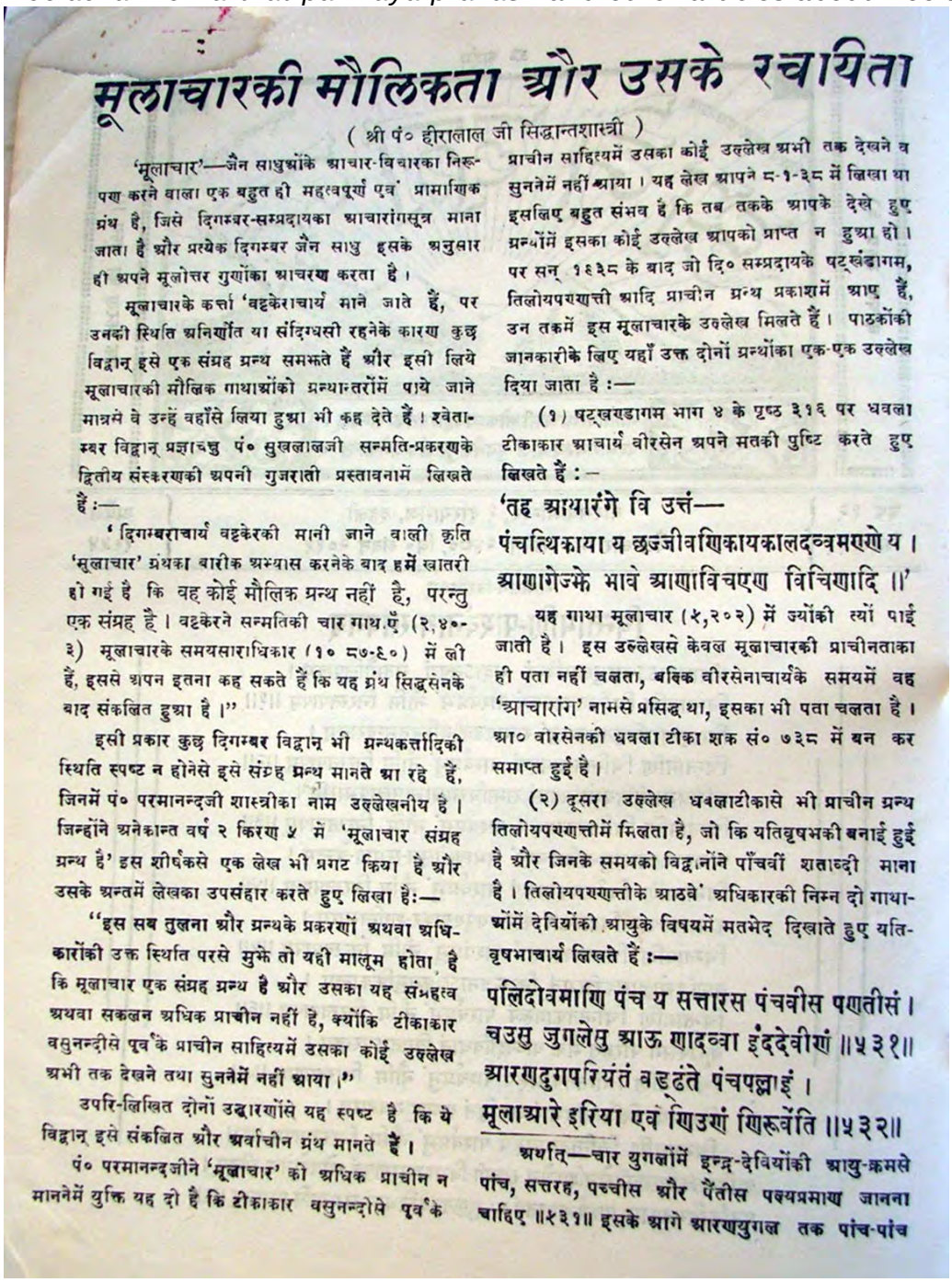

# मूलाचारकी मौलिकता और उसके रचयिता

( श्री पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री )

'मूलाचार'—जैन साधुओंके आचार-विचारका निरूपण करने वाला एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रंथ है, जिसे दिगम्बर-सम्प्रदायका आचारांगसूत्र माना जाता है और प्रत्येक दिगम्बर जैन साधु इसके अनुसार ही अपने मूलोत्तर गुणोंका आचरण करता है।

मूलाचारके कर्त्ता 'वट्टकेराचार्य माने जाते हैं, पर उनकी स्थिति अनिर्णीत या संदिग्धसी रहनेके कारण कुछ विद्वान् इसे एक संग्रह ग्रन्थ समझते हैं और इसी लिये मूलाचारकी मौलिक गाथाओंको ग्रन्थान्तरोंमें पाये जाने मात्रसे वे उन्हें वहाँसे लिया हुआ भी कह देते हैं। श्वेताम्बर विद्वान् प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी सन्मति-प्रकरणके द्वितीय संस्करणकी अपनी गुजराती प्रस्तावनामें लिखते हैं:—

'दिगम्बराचार्य वट्टकेरकी मानी जाने वाली कृति 'मूलाचार' ग्रंथका बारीक अभ्यास करनेके बाद हमें खातरी हो गई है कि वह कोई मौलिक ग्रन्थ नहीं है, परन्तु एक संग्रह है। वट्टकेरने सन्मतिकी चार गाथाएँ (२,४०-३) मूलाचारके समयसाराधिकार (१० ८७-९०) में ली हैं, इससे अपन इतना कह सकते हैं कि यह ग्रंथ सिद्धसेनके बाद संकलित हुआ है।"

इसी प्रकार कुछ दिगम्बर विद्वान् भी ग्रन्थकर्त्तादिकी स्थिति स्पष्ट न होनेसे इसे संग्रह ग्रन्थ मानते आ रहे हैं, जिनमें पं० परमानन्दजी शास्त्रीका नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने अनेकान्त वर्ष २ किरण ५ में 'मूलाचार संग्रह ग्रन्थ है' इस शीर्षकसे एक लेख भी प्रगट किया है और उसके अन्तमें लेखका उपसंहार करते हुए लिखा है:—

"इस सब तुलना और ग्रन्थके प्रकरणों अथवा अधिकारोंकी उक्त स्थिति परसे मुझे तो यही मालूम होता है कि मूलाचार एक संग्रह ग्रन्थ है और उसका यह संग्रहत्व अथवा सकलन अधिक प्राचीन नहीं है, क्योंकि टीकाकार वसुनन्दीसे पूर्वके प्राचीन साहित्यमें उसका कोई उल्लेख अभी तक देखने तथा सुननेमें नहीं आया।"

उपरि-लिखित दोनों उद्धरणोंसे यह स्पष्ट है कि ये विद्वान् इसे संकलित और अर्वाचीन ग्रंथ मानते हैं।

पं० परमानन्दजीने 'मूलाचार' को अधिक प्राचीन न माननेमें युक्ति यह दी है कि टीकाकार वसुनन्दीसे पूर्वके प्राचीन साहित्यमें उसका कोई उल्लेख अभी तक देखने व सुननेमें नहीं आया। यह लेख आपने ८-१-३८ में लिखा था इसलिए बहुत संभव है कि तब तकके आपके देखे हुए ग्रन्थोंमें इसका कोई उल्लेख आपको प्राप्त न हुआ हो। पर सन् १९३८ के बाद जो दि० सम्प्रदायके षट्खंडागम, तिलोयपण्णत्ती आदि प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशमें आए हैं, उन तकमें इस मूलाचारके उल्लेख मिलते हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिए यहाँ उक्त दोनों ग्रन्थोंका एक-एक उल्लेख दिया जाता है:—

(१) षट्खण्डागम भाग ४ के पृष्ठ ३१६ पर धवला टीकाकार आचार्य वीरसेन अपने मतकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं:—

'तह आयारंगे वि उत्तं—

पंचत्थिकाया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य।
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि ॥'

यह गाथा मूलाचार (५,२०२) में ज्योंकी त्यों पाई जाती है। इस उल्लेखसे केवल मूलाचारकी प्राचीनताका ही पता नहीं चलता, बल्कि वीरसेनाचार्यके समयमें वह 'आचारांग' नामसे प्रसिद्ध था, इसका भी पता चलता है। आ० वीरसेनकी धवला टीका शक सं० ७३८ में बन कर समाप्त हुई है।

(२) दूसरा उल्लेख धवलाटीकासे भी प्राचीन ग्रन्थ तिलोयपण्णत्तीमें मिलता है, जो कि यतिवृषभकी बनाई हुई है और जिनके समयको विद्वानोंने पाँचवीं शताब्दी माना है। तिलोयपण्णत्तीके आठवें अधिकारकी निम्न दो गाथाओंमें देवियोंकी आयुके विषयमें मतभेद दिखाते हुए यतिवृषभाचार्य लिखते हैं:—

पलिदोवमाणि पंच य सत्तारस पंचवीस पण्णासं।
चउसु जुगलेसु आऊ णादव्वा इंददेवीणं ॥५३१॥
आरणदुगपरियंतं वड्ढंते पंचपल्लाइं।
मूलाआरे इरिया एवं णिउणं णिरूवेंति ॥५३२॥

अर्थात्—चार युगलोंमें इन्द्र-देवियोंकी आयु-क्रमसे पांच, सत्तरह, पच्चीस और पैंतीस पल्यप्रमाण जानना चाहिए ॥५३१॥ इसके आगे आरणयुगल तक पांच-पांच

पल्यकी वृद्धि होती है। ऐसा मूलाचारमें आचार्य स्पष्टतासे निरूपण करते हैं ॥५३२॥

यतिवृषभने यहां मूलाचारके जिस मतभेदका उल्लेख किया है, वह वर्तमान मूलाचारके बारहवें पर्याप्त्यधिकारकी ८०वीं गाथामें उक्त रूपसे ही इस प्रकार पाया जाता है:—

**पणयं दस सत्तधियं पणवीसं तीसमेव पंचधियं।**
**चत्तालं पणदालं पण्णाओ पण्णपण्णाओ ॥८०॥**

अर्थात्—देवियोंकी आयु सौधर्म-ईशान कल्पमें पांच पल्य, सनत्कुमार माहेन्द्रकल्पमें सत्तरह पल्य, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पमें पच्चीस पल्य, लान्तव-कापिष्ठ-कल्पमें पैंतीस पल्य, शुक्र-महाशुक्रमें चालीस पल्य, शतार-सहस्रारकल्पमें पैंतालीस पल्य, आनत-प्राणत कल्पमें पचास पल्य और आरण-अच्युत कल्पमें पचवन पल्य है॥

यतिवृषभाचार्यके इस उल्लेखसे मूलाचारकी केवल प्राचीनता ही नहीं, किंतु प्रमाणिकता भी सिद्ध होती है।

यहाँ एक बात और भी जानने योग्य है और वह यह कि मूलाचार-कारने देवियोंकी आयुसे सम्बन्ध रखने वाले जहां केवल दो ही मतोंका उल्लेख किया है, वहां तिलोयपण्णत्तीकारने देवियोंकी आयु-सम्बन्धी चार मत-भेदोंका उल्लेख किया है। उनमें प्रथम मतभेद तो बारह स्वर्गोंकी मान्यता वालोंका है। तीसरा मतभेद 'लोकायनी' (संभवतः लोकविभाग) ग्रन्थका है। दूसरा और चौथा मत मूलाचार का है। इससे एक खास निष्कर्ष यह भी फलित होता है कि मूलाचार-कारके सम्मुख जब दो ही मत-भेद थे, तब तिलोयपण्णत्ती-कारके सम्मुख चार मतभेद थे—अर्थात् तिलोयपण्णत्तीके रचना-कालसे मूलाचारका रचना-काल इतना प्राचीन है कि मूलाचारकी रचना होनेके पश्चात् और तिलोयपण्णत्तीकी रचना होनेके पूर्व तक अन्तरालवर्त्ती कालमें अन्य और भी दो मत-भेद देवियोंकी आयुके विषयमें उठ खड़े हुए थे और तिलोयपण्णत्तीकारने उन सबका संग्रह करना आवश्यक समझा।

इन दो उल्लेखोंसे मूलाचारकी प्राचीनता और मौलिकता असंदिग्ध हो जाता है।

यहां एक बात और भी ध्यान देने योग्य यह है कि धवला टीकामें जो गाथा आचारांगके नामसे उद्धृत है, वह श्वेत० आचारांगमें नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त राजवार्तिक आदिमें आचारांगके स्वरूपका वर्णन करते हुए जो प्रश्न और उत्तर रूपसे दो गाथाएं पाई जाती हैं, वे भी श्वेता० आचारांगमें उपलब्ध नहीं हैं, जब कि वे दोनों गाथाएं मूलाचारके समयसाराधिकारमें पाई जाती हैं और इस प्रकार हैं:—

**कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सये ?**
**कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झदि ॥१२१**
**जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये।**
**जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ ॥१२२॥**

धवला टीकाके उपर्युक्त उल्लेखसे तथा इन दोनों गाथाओंकी उपलब्धिसे वर्तमान मूलाचार ही आचारांग सूत्र है, यह बात भले प्रकार सिद्ध होती है।

अब देखना यह है कि स्वयं मूलाचारकी स्थिति क्या है और वह वर्तमानमें जिस रूपमें पाया जाता है उसका वह मौलिक रूप है या संगृहीत रूप ?

मूलाचारकी टीका प्रारम्भ करते हुए आ० वसुनन्दीने जो उत्थानिका दी है, उससे उक्त प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है अतः उसे यहां उद्धृत किया जाता है। वह उत्थानिका इस प्रकार है:—

श्रुतस्कन्धाधारभूतमष्टादशपदसहस्रपरिमाणं, मूलगुणप्रत्याख्यान-संस्तर-स्तवाराधना-समयाचार-पंचाचार-पिंडशुद्धि—षडावश्यक—द्वादशानुप्रेक्षाऽनगारभावना—समयसार-शीलगुणप्रस्तार-पर्याप्त्यधिकार-निबद्धमहार्थगभीरं, लक्षणसिद्धपदवाक्यवर्णोपचितं, घातिकर्मक्षयोत्पन्नकेवलज्ञानप्रबुद्धाशेषगुणपर्यायखचितषड्द्रव्यनवपदार्थजिनवरोपदिष्टं, द्वादशविधतपोऽनुष्ठानोत्पन्नानेकप्रकारर्द्धिसमन्वितगणधरदेवरचितं मूलगुणोत्तरगुणस्वरूपविकल्पोपायसाधनसहायफलनिरूपणप्रवणमाचारांगमाचार्यपारम्पर्यप्रवर्तमानमल्पबलमेधायु—शिष्यनिमित्तं द्वादशाधिकारैरुपसंहर्तुकामः स्वस्य श्रोतॄणां च प्रारब्धकार्यप्रत्यूहनिराकरणक्षमं शुभपरिणामं विदधच्छ्रीवट्टकेराचार्यः प्रथमतरं तावन्मूलगुणाधिकारप्रतिपादनार्थं मंगलपूर्विकां प्रतिज्ञां विधत्ते—

अर्थात् जो श्रुतस्कन्ध—द्वादशाङ्गरूप श्रुतवृक्षका आधारभूत है, अट्ठारह हज़ार पद-परिमाण है, मूलगुण आदि बारह अधिकारोंसे निबद्ध एवं महान् अर्थ-गाम्भीर्यसे युक्त है, लक्षण-सिद्ध वर्ण, पद और वाक्योंसे सम-

न्वित है. घातिकर्मक्षयसे उत्पन्न केवलज्ञानके द्वारा जिन्होंने षट् द्रव्यों और नव पदार्थोंके समस्त गुण और पर्यायोंको जान लिया है, ऐसे जिनेन्द्रदेवसे उपदिष्ट है, बारह प्रकारके तपोंके अनुष्ठानसे जिनके अनेक प्रकारकी ऋद्धियां उत्पन्न हुई हैं, ऐसे गणधरदेवसे जो रचित है, और जो साधुओंके मूलगुणों और उत्तरगुणोंके स्वरूप, भेद उपाय, साधन, सहाय और फलका निरूपण करने वाला है, ऐसे आचार्य—परम्परासे आये हुए आचाराङ्गको अल्प बल बुद्धि और आयु वाले शिष्योंके लिए द्वादश अधिकारों-से उपसंहार करनेके इच्छुक श्रीवट्टकेराचार्य अपने और श्रोताजनोंके प्रारब्ध कार्यमें आने वाले विघ्नोंके निराकरण-में समर्थ ऐसे शुभ परिणामको धारण करते हुए सर्व प्रथम मूलगुणाधिकारके प्रतिपादन करनेके लिए मंगल-पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं :—

इस उत्थानिकाके द्वारा यह प्रकट किया गया है कि जिनेन्द्र-उपदिष्ट एवं गणधर-रचित, द्वादशांग वाणीका आद्य जो आचारांग सूत्र है वह महान् गम्भीर और अति विशाल है, उसे अल्प बल-बुद्धि वाले शिष्योंके लिए ग्रन्थकार उन्हीं बारह अधिकारोंमें उपसंहार कर रहे हैं, जिन्हें कि गणधरदेवने रचा था। इस उल्लेखसे प्रस्तुत ग्रन्थकी मौलिकता एवं प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है। यह उल्लेख ठीक उसी प्रकारका है, जैसा कि कसाय-पाहुडके लिए वीरसेनाचार्यने किया है। यथा—

'तदो अंगपुव्वाणमेगदेसो चेव आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं संपत्तो पुणो तेण गुणहरभडारएण णाणपवादपंचमपुव्व-दसमवत्थु-तदियकसायपाहुडमहण्णव-पारएण गंथवोच्छेदभएण पवयणवच्छलत्तेण परवसीकयहियएण एदं पेज्जदोसपाहुडं सोलसपदसहस्सपमाणं होंतं असीदिसदमेत्तगाहाहि उपसंहारिदं।''

अर्थात्—उक्त अंग-पूर्वोंका एक देश ही आचार्य परम्परासे आकर गुणधराचार्यको प्राप्त हुआ। पुनः ज्ञान-प्रवाद नामक पांचवें पूर्वकी दशवीं वस्तुके तीसरे कसाय पाहुडरूप महार्णवके पारको प्राप्त उन गुणधर-भट्टारकने जिनका कि हृदय प्रवचनके वात्सल्यसे परिपूर्ण था, सोलह हजार पदप्रमाण इस पेज्जदोसपाहुडका ग्रन्थ-विच्छेदके भयसे केवल एकसौ अस्सी गाथाओंके द्वारा उपसंहार किया।

इस विवेचनसे न केवल मूलाचारकी मौलिकता और प्रामाणिकताका ही बोध होता है, अपितु उसके कर्त्ता वट्टकेराचार्यके अगाध श्रुतपांडित्यका भी पता चलता है। उक्त उल्लेखके आधार पर कमसे कम इतना तो निर्विवाद मानना ही पड़ेगा कि उन्हें आचार्य-परम्परासे आचारांग-का पूर्ण ज्ञान था, वे उसके प्रत्येक अधिकारसे भली भांति परिचित थे और इसीलिए उन्होंने उन्हीं बारह अधिकारोंमें अट्ठारह हजार पदप्रमाण उस विस्तृत आचा-रांगसूत्रका उपसंहार किया है। ठीक वैसे ही, जैसे कि सोलह हजार पदप्रमाण पेज्जदोसपाहुडका गुणधराचार्यने मात्र एक सौ अस्सी गाथाओंमें उपसंहार किया है।

मूलाचार एक मौलिक ग्रन्थ है, संग्रह ग्रन्थ नहीं, इसका परिज्ञान प्रत्येक अधिकारके आद्य मंगलाचरण और अन्तिम उपसंहार-वचनोंसे भी होता है और जो पाठकके हृदयमें अपनी मौलिकताकी मुद्राको सहजमें ही अंकित करता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि जब यह मौलिक ग्रन्थ है, तो फिर इसके भीतर अन्य ग्रंथोंकी गाथाएँ क्यों उपलब्ध होती हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें दो बातें कहीं जा सकती हैं। एक तो यह—कि जिन गाथाओं-को अन्य ग्रन्थोंकी कहा जाता है, बहुत सम्भव है कि वे इन्हींके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थोंकी हों? और दूसरे यह कि अनेकों गाथाएँ आचार्य-परम्परासे चली आ रही थीं, उन्हें मूलाचारकारने अपने ग्रन्थमें यथास्थान निबद्ध कर दिया। अपने इस निबद्धीकरणका वे प्रस्तुत ग्रन्थमें यथा-स्थान संसूचन भी कर रहे हैं। उदाहरणके तौर पर यहाँ ऐसे कुछ उल्लेख दिये जाते हैं:—

(१) वोच्छं सामाचारं समासदो आणुपुव्वीए (४,१)
(२) वोच्छामि समयसारं सुण संखेवं जहावुत्तं (८,१)
(३) पज्जत्ती-संगहणी वोच्छामि जहाणुपुव्वीए (१२,१)

तीसरे उद्धरणमें आया हुआ 'पज्जत्ती संगहणी' पद उपर्युक्त शंकाका भली भांति समाधान कर रहा है।

## वट्टकेराचार्य कौन हैं?

मूलाचारके कर्त्ताके रूपमें जिनका नाम लिया जाता है, वे वट्टकेराचार्य कौन हैं, इस प्रश्नका अभी तक निर्णय नहीं हो सका है? विभिन्न विद्वानोंने इसके लिए विभिन्न आचार्योंकी कल्पनाएँ की हैं. परन्तु इस नामके आचार्य-का किसी शिलालेखादिमें कोई उल्लेखादि न होनेसे 'वट्टकेराइरिय' अभी तक विचारणीय ही बने हुए हैं।

पुरातन-जैनवाक्य-सूची की प्रस्तावनाके १८ वें पृष्ठ पर आचार्य श्री प्र० जुगलकिशोरजी मुख्तारने लिखा है:—

"××× इस ( वट्टकेराइरिय ) नामके किसी भी आचार्यका उल्लेख अन्यत्र गुर्वावलियों, पट्टावलियों शिलालेखों तथा ग्रन्थ-प्रशस्तियों आदिमें कहीं भी देखनेमें नहीं आता और इसलिए ऐतिहासिक विद्वानों एवं रिसर्चस्कालरोंके सामने यह प्रश्न बराबर खड़ा हुआ है कि ये वट्टकेरादि नामके कौनसे आचार्य हैं और कब हुए हैं?"

श्री मुख्तार सा० ने 'वट्टकेराचार्य' के सन्धि-विच्छेद-द्वारा अर्थ-संगति बिठानेका प्रयास भी उक्त प्रस्तावनामें किया है। वे 'वट्टकेराइरिय' का वट्टक+इरा+आइरिय' ऐसा सन्धि-विच्छेद करते हुए लिखते हैं:—

"वट्टक' का अर्थ वर्तक-प्रवर्तक है, 'इरा' गिरा वाणी-सरस्वतीको कहते हैं, जिसकी वाणी सरस्वती प्रवृत्तिका हो - जनताको सदाचार एवं सन्मार्गमें लगाने वाली हो—उसे वट्टकेर' समझना चाहिए। दूसरे, वट्टकों-प्रवर्तकोंमें जो इरि = गिरि प्रधान-प्रतिष्ठित हो, अथवा ईरि = समर्थ-शक्तिशाली हो, उसे 'वट्टकेरि' जानना चाहिए। तीसरे 'वट्ट' नाम वर्तन-आचरणका है और 'ईरक' प्रेरक तथा प्रवर्तकको कहते हैं, सदाचारमें जो प्रवृत्ति कराने वाला हो, उसका नाम 'वट्टेरक' है। अथवा 'वट्ट' नाम मार्गका है, सन्मार्गका जो प्रवर्तक, उपदेशक एवं नेता हो उसे भी वट्टेरक कहते हैं। और इसलिए अर्थकी दृष्टिसे ये वट्टकेरादि पद कुन्दकुन्दके लिए बहुत ही उपयुक्त तथा संगत मालूम होते हैं। आश्चर्य नहीं, जो प्रवर्तकत्व-गुणकी विशिष्टताके कारण ही कुन्दकुन्दके लिए 'वट्टकेरकाचार्य ( प्रवर्तकाचार्य )' जैसे पदका प्रयोग किया गया हो।"

श्री० नाथूरामजी प्रेमीका 'मूलाचारके कर्त्ता वट्टकेरि' शीर्षक लेख जैन सिद्धान्त-भास्करके भाग १२ की किरण १ में प्रकाशित हुआ है, उसमें वे लिखते हैं:—

'××× वट्टकेरि' नाम भी गाँवका बोधक होना चाहिए और मूलाचारके कर्ता बेट्टगेरी या बेट्टकेरी ग्रामके ही रहने वाले होंगे और जिस तरह कोण्डकुण्डके रहने वाले आचार्य कौण्डकौण्डाचार्य, तथा तुम्बुलूर ग्रामके रहने वाले तुम्बुलूराचार्य कहलाये, उसी तरह ये वट्टकेराचार्य कहलाने लगे।'

इसी लेखमें आप लिखते हैं कि 'डा० ए. एन. उपाध्यायने मुझे बतलाया है कि कनड़ीमें 'बेट्ट' छोटी पहाड़ीको और 'केरो' गली या मोहल्लेको कहते हैं। बेलगाव और धारवाड़ जिलेमें इस नामके गांव अब भी मौजूद हैं।

आगे आप लिखते हैं—"पं० सुब्बय्या शास्त्रीसे मालूम हुआ कि श्रवणबेल्गोलका भी एक मुहल्ला बेट्टगेरि नामसे प्रसिद्ध है। कारिकलके हिरियंगडि बस्तिके पद्मावती देवीके मन्दिरके एक स्तम्भ पर शक सं० १३३७ का एक शिलालेख है जो कनड़ी भाषामें है। इस लेखमें 'बेट्टकेरि' गांवका नाम दो बार आया है और वह कारिकलके पास ही कहीं होना चाहिए। सो हमारा अनुमान है कि मूलाचारके कर्त्ता 'वट्टकेरि' भी उक्त नामके गांवोंमेंसे ही किसी गांवके रहने वाले होंगे।"

प्रेमीजीके इस लेखमें सुझाई गई कल्पनाओंके विषयमें मुख्तार साहब अपनी उसी प्रस्तावनामें लिखते हैं:—

"बेट्टगेरि या बेट्टकेरी नामके कुछ ग्राम तथा स्थान पाये जाते हैं. मूलाचारके कर्त्ता उन्हींमें से किसी बेट्टगेरि या बेट्टकेरी ग्रामके ही रहने वाले होंगे और उस परसे कौण्डकुण्डादिकी तरह 'बेट्टकेरी' कहलाने लगे होंगे, यह कुछ संगत नहीं मालूम होता—बेट्ट और वट्ट शब्दोंके रूपमें ही नहीं, किन्तु भाषा तथा अर्थमें भी बहुत अन्तर है। 'बेट्ट' शब्द प्रेमीजीके लेखानुसार छोटी पहाड़ीका वाचक कनड़ी भाषाका शब्द है और 'गेरि' उस भाषामें गली-मोहल्लेको कहते हैं; जबकि 'वट्ट' और वट्टक' जैसे शब्द प्राकृत भाषाके उपर्युक्त अर्थके वाचक शब्द हैं और ग्रन्थकी भाषाके अनुकूल पड़ते हैं। ग्रन्थभरमें तथा उसकी टीकामें 'बेट्टगेरि' या 'बेट्टकेरी' रूपका एक जगह भी प्रयोग नहीं पाया जाता और न इस ग्रन्थके कर्तृत्वरूपमें अन्यत्र ही उसका प्रयोग देखनेमें आता है, जिससे उक्त कल्पनाको कुछ अवसर मिलता।"

( पुरातन जैनवाक्यसूची प्रस्ता० पृ० १६ )

उपर्युक्त दोनों विद्वानोंके कथनोंका समीक्षण करते हुए मुझे मुख्तार साहबका अर्थ वास्तविक नामको और अधिक संकेत करता हुआ जान पड़ता है। यदि 'वट्टकेराइरिय' का सन्धि-विच्छेद 'वट्टक + एरा + आइरिय' करके और संस्कृत-प्राकृतके 'ड-लयोः र-लयोरभेदः' नियमको ध्यानमें रखकर इसका अर्थ किया जाय, तो सहजमें ही 'वर्तक + एला + आचार्य = वर्तकैलाचार्य नाम प्रगट हो जाता है। आचार्य कुन्दकुन्दका एक नाम 'एलाचार्य' भी

प्रसिद्ध है। वर्तक या प्रवर्तक यह उनकी उपाधि या पद रहा है, जिसका अर्थ होता है—वर्तन, प्रवर्तन, या आचरण करानेवाला। मेरे इस कथनकी पुष्टि इसी मूलाचारके समाचाराधिकारसे भी होती है जिसमें साधुको कहाँ पर नहीं रहना चाहिए इस बातको बतलाते हुए मूलाचारकार कहते हैं—

**तत्थ ण कप्पइ वासो जत्थ इमे णत्थि पंच आधारा।**
**आइरिय-उवज्झाया पवत्त थेरा गणधरा य ॥१५५**

अर्थात्—साधुको उस गुरुकुलमें नहीं रहना चाहिए, जहां पर कि आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर, ये पाँच आधार न हों।

आ० वसुनन्दी 'पवत्त' पदकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं:—'संघं प्रवर्तयतीति प्रवर्तकः' अर्थात् जो संघका उत्तम दिशामें प्रवर्तन करे, वह प्रवर्तक कहलाता है।

स्वयं मूलाचार-कार उपर्युक्त पांचों आधारोंका अर्थ इससे आगेकी गाथामें इस प्रकार सूचित करते हैं:—

**सिस्साणुग्गहकुसलो धम्मुवदेसो य संघवट्टवओ।**
**मज्जादुवदेसो वि य गणपरिरक्खो मुणेयव्वो ।१५६**

अर्थात्—जो शिष्योंके अनुग्रहमें कुशल हो, उसे आचार्य कहते हैं जो धर्मका उपदेश दे, वह उपाध्याय कहलाता है। जो संघका प्रवर्तक हो, चर्या आदिके द्वारा उपकारक हो उसे प्रवर्तक कहते हैं, जो साधु-मर्यादाका उपदेश दे, वह स्थविर है और जो सर्व प्रकारसे गणकी रक्षा करे उसे गणधर कहते हैं।

मूलाचार कारने इससे आगेके षडावश्यक अधिकारमें सामायिक करनेके पूर्व किस-किसका कृतिकर्म करना चाहिए, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा है :—

**आइरिय-उवज्झायाणं पवत्तय थेर-गणधरादीणं।**
**एदेसिं किदियम्मं कायव्वं णिज्जरट्ठाए ॥९४॥**

अर्थात कर्मोंकी निर्जराके लिए आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधरादिका कृतिकर्म करना चाहिए।

मूलाचारके इन दोनों उद्धरणोंसे जहां 'प्रवर्तक' पद की विशेषता प्रकट होती है, वहां उससे इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि मूलाचार-रचयिताके समय तक अनेक साधु-संघ विशाल परिमाण में विद्यमान थे और उनके भीतर उक्त पाँचों पदोंके धारक मुनि-पुंगव भी होते थे। यही कारण है कि वे शिष्यों-सामान्य साधुजनोंके लिए हिदायत देते हुए कहते हैं कि साधुको उस गुरुकुलमें नहीं रहना चाहिए, जहाँ पर कि उक्त पांच आधार न हों। दूसरे उल्लेखसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है, जिसमें कि संघ के आधारभूत उक्त पांचोंके कृतिकर्म करनेका विधान किया गया है।

समाचाराधिकारकी गाथा नं. १५६ के 'संघवट्टवओ' पदका आ० वसुनन्दिकृत अर्थ 'संघप्रवर्तकश्चर्यादिभिरुपकारकः' देखनेसे और स्वयं आचारांग शास्त्रके रचयिता होनेसे यह बात सहजमें ही हृदय पर अंकित होती है कि एलाचार्य किसी बहुत बड़े साधु संघके प्रवर्तक पद पर आसीन थे और इसी कारण पश्चाद्वर्ती आचार्योंने उन्हें इसी नामसे स्मरण किया। वर्तक+एलाचार्यका ही प्राकृतरूप 'वट्टकेराइरिय' है। ऐसा ज्ञात होता है कि मूलाचारकी जो मूलप्रतियाँ आ० वसुनन्दीके सामने रही हैं उनके अन्तमें 'वट्टकेराइरिय विरइय' जैसा पाठ रहा होगा और उसमें के अन्तिम पद 'आइरिय' का संस्कृतरूप आचार्य करके प्रारंभके 'वट्टकेर' को उन्होंने किसी आचार्य विशेषका नाम समझकर और उसके संस्कृतरूप पर ध्यान न देकर अपनी टीकाके आदि व अन्तमें उसके रचयिताका 'वट्टकेराचार्य' नाम से उल्लेख कर दिया।

## वर्तक-एलाचार्य या कुन्दकुन्द

उक्त विवेचनसे यह तो स्पष्ट हो गया कि मूलाचारके कर्त्ता प्रवर्तक एलाचार्य हैं। पर इस नामके अनेक आचार्य हो गये हैं, अतः मूलाचारके कर्त्ता कौनसे एलाचार्य हैं? यह सहजमें ही प्रश्न उपस्थित होता है। ऐतिहासिक विद्वानोंने तीन एलाचार्योंकी खोज की है। प्रथम कुन्दकुन्द, जो मूलसंघके प्रवर्तक माने जाते हैं। दूसरे वे, जो धवला टीकाकार वीरसेनाचार्यके गुरु थे और तीसरे 'ज्वालिनीमत' नामक ग्रन्थके आद्य प्रणेता। जैसा कि लेखके प्रारम्भमें बताया गया है, धवला टीकामें मूलाचारके आचारांगके रूपसे और तिलोयपण्णत्तीमें मूलाचारके रूपसे उल्लेख होनेके कारण मूलाचारके कर्ता अन्तिम दोनों एलाचार्य नहीं हो सकते हैं, अतः पारिशेषन्यायसे कुन्दकुन्द ही एलाचार्यके रूपसे सिद्ध होते हैं।

मूलाचारकी कितनी ही प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें भी ग्रन्थकर्त्ताका नाम कुन्दकुन्दाचार्य पाया जाता है।

माणिकचन्द्र ग्रन्थमालासे प्रकाशित मूलाचारके अन्तमें जो पुष्पिका पाई जाती है उसमें भी मूलाचारको कुंदकुंदाचार्य प्रणीत लिखा है। वह पुष्पिका इस प्रकार है :—
'इति मूलाचारविवृतौ द्वादशोऽध्यायः । कुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीतमूलाचाराख्यविवृतिः। कृतिरियं वसुनन्दिनः श्रीश्रमणस्य।' इससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है।

आ० कुन्दकुन्दके समयसार, प्रवचनसारादि ग्रन्थोंके साथ मूलाचारका कितना सादृश्य है, यह पृथक् लेख द्वारा प्रगट किया जायगा। यहाँ पर इस समय इतना ही कहना है कि मूलाचारको सामने रखकर कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थोंका गहरा अभ्यास करने वाले पाठकोंसे यह अविदित नहीं रहेगा कि मूलाचारके कर्त्ता आ० कुन्दकुन्द ही हैं। ऐसी हालतमें प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजीका या पं० परमानंदजी शास्त्रीका कथन कितना सार-गर्भित है, यह सहज ही जाना जा सकता है। यहाँ पर मुझे यह प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि पं० परमानन्दजीको अब अपने उस पूर्व कथनका आग्रह नहीं है, वे कुछ पहलेसे ही मूलाचारको एक अति प्राचीन मौलिक ग्रन्थ समझने लगे हैं।

पाँचवे श्रुतकेवली आ० भद्रबाहुके समयमें होने वाले दुर्भिक्षसे जो संघभेद हो गया और इधर रहने वाले साधुओंके आचार-विचारमें जो शिथिलता आई, उसे देखकर ही मानों आ० कुन्दकुन्दने साधुओंके आचार-प्रतिपादक मूल आचारांगका उद्धार कर प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना की, इसी कारणसे इस ग्रन्थका नाम मूलाचार पड़ा और तदनुसार साधु-संघका प्रवर्तन करानेसे उनके संघका नाम भी मूलसंघ प्रचलित हुआ, ये दोनों ही बातें 'वट्टकेराइरिय' नामके भीतर छिपी हुई हैं और इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूलाचार अति प्राचीन मौलिक ग्रन्थ है और उसके रचयिता एलाचार्य नाम से प्रख्यात आ० कुन्दकुन्द ही हैं।

# मूलाचारकी कुंदकुंदके अन्य ग्रंथोंके साथ समता

( पं० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री )

अनेकान्तकी गत किरणमें मैंने मूलाचारकी मौलिकता बतलाते हुए उसके रचयिताकी ओर संकेत किया था और यह बतलाया था कि 'वट्टकेराइरिय' यह पद ही मूलाचार-रचयिता के नामका स्वयं उद्घोष कर रहा है। और वे वर्तकाचार्य कुन्दकुन्द ही हैं। अब इस लेखद्वारा मूलाचार की कुन्दकुन्दाचार्यके अन्य ग्रन्थोंसे शब्द-साम्य और अर्थ-साम्यके साथ-साथ शैली-गत समता बतलाते हुए यह दिखाया जायगा कि मूलाचारकी गाथाएं कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थोंमें कहां और किस परिमाणमें पाई जाती हैं, जिससे कि मूलाचारके कर्त्ता आ० कुन्दकुन्द ही हैं, यह बात भली भांति जानी जा सके।

## शैली-समता

जिस प्रकार कुन्दकुन्द-रचित पाहुडों, ग्रंथों और ग्रन्थ-गत अधिकारोंके प्रारम्भमें मंगलाचरण पाया जाता है, ठीक उन्हीं या उसी प्रकारके शब्दोंमें हम मूलाचार-गत प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें मंगलाचरण देखते हैं। यहाँ उदाहरण-के तौर पर कुछ नमूने प्रस्तुत किए जाते हैं :—

(१) एस करेमि पणामं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
सेसाणं च जिणाणं सगण-गणधराणं च सव्वेसिं॥
( मूलाचार, ३, १ )

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
( दर्शनपाहुड, १ )

चउवीसं तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे।
सव्वे सगणगणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि॥
( चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्ति १ )

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।
( प्रवचनसार २०१ )

(२) काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
( मूलाचार, ७, १ )

काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
( लिंगपाहुड १ )

(३) वंदित्तु देवदेवं तिहुअणमहिदं च सव्वसिद्धाणं
( मूलाचार, १०, १ )

वंदित्तु सव्वसिद्धे ( समयपाहुड, १, )

वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता ( चारित्रपाहुड, १ )

णमिऊण जिणवरिंदे णर-सुर-भवणिंदवंदिए सिद्धे।
( भावपाहुड, १ )

(४) काऊण णमोक्कारं सिद्धाणं कम्मचक्कवज्जाणं।
( मूलाचार, १२, १)

सिद्धवरसासणाणं सिद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं।
काऊण णमुक्कारं। ( श्रुतभक्ति, १ )

(५) सिद्धे णमंसिदूण य झाणुत्तमखविददीहसंसारे।
दह दह दो दो य जिणे दह दो अणुपेहणं वोच्छं॥
( मूलाचार, ८, १ )

णमिऊण सव्वसिद्धे झाणुत्तमखविददीहसंसारे।
दस दस दो दो य जिणे दस दोअणुपेहणं वोच्छे॥
( वारस अणुवेक्खा. १ )

उक्त अवतरणोंसे पाठकगण स्वयं यह अनुभव करेंगे कि मंगलाचरणके इन पद्योंमें परस्पर कितना साम्य है। इनमें नं० २ का उदाहरण तो शब्दशः ही पूर्ण समता रखता है। यही हाल नं० ४ के अवतरणका है उसमें मूलाचारके प्रथम द्वितीय चरण श्रुतभक्तिके द्वितीय-तृतीय चरणके साथ शब्दशः समता रखते हैं भेदकेवल 'वज्जाणं' के स्थान पर 'मुक्काणं' पदका है, जो कि पर्यायवाची ही है। पांचवें उद्धरणकी तो पूरी गाथा की गाथा ज्यों की त्यों दोनोंमें समान है, केवल प्रथम चरणके दोनों पद एक दूसरेमें आगे पीछे रखे गये हैं। 'दस' आदि पदोंके 'स' के स्थान पर 'ह' पाठ और 'वोच्छं' के स्थान पर 'वोच्छे' पाठ भी प्राकृत भाषाके नियमसे बाहिर नहीं हैं। मंगला-चरणकी यह समता मूलाचारको कुन्दकुन्द-रचित माननेके लिए प्रेरित करती है।

जिस प्रकार कुन्दकुन्द अपने ग्रन्थोंमें मंगलाचरणके साथ ही अपने प्रतिपाद्य विषयके कहनेकी प्रतिज्ञा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, ठीक यही क्रम मूलाचारके प्रत्येक अधिकारमें दृष्टिगोचर होता है। यथा—

(१) इहपरलोगहिदत्थे मूलगुणे कित्तइस्सामि।
(मूलाचार. १,१)

मुक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे।
(चारित्रपाहुड २)

(२) वोच्छं सामाचारं समासदो आणुपुव्वीए।
(मूलाचार. ४.१)

पज्जतीसंगहणी वोच्छामि जहाणुपुव्वीए।
(मूलाचार. १२, १)

दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकमं समासेण।
(दर्शनपाहुड. १)

(३) वोच्छामि समयसारं सुण संखेवं जहावुत्तं।
(मूलाचार, १०,१)

वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं।
(समयसार. १)

वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं (लिंगपाहुड १)

वोच्छामि भावपाहुड० (भावपाहुड. १)

वोच्छामि रयणसारं रयणसार. १)

(४) पणमिय सिरसा वोच्छं समासदो पिंडसुद्धी दु।
(मूलाचार. ६. १)

एसो पणमिय सिरसा समयमियं सुणह वोच्छामि।
(पंचास्तिकाय. २)

जहां उपरि-उक्त अवतरणोंसे प्रतिपाद्य विषयके कहनेकी प्रतिज्ञा मूलाचारके समान ही कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थोंमें पाई जाती है, वहां क्रियापदोंका और 'समासदो, समासेण, संखेवं, आणुपुव्वीए, जहाणुपुव्वीए आदि पदोंकी समता भी इन ग्रन्थोंके एक कर्तृत्वको प्रगट करती है।

## विषय-समता

(१) आ० कुन्दकुन्दने प्रवचनसारके तृतीय अधिकारमें मुनियोंके २८ मूलगुणोंका संक्षेपसे वर्णन किया है, क्योंकि वह साररूप ग्रन्थ है। परन्तु मूलाचारमें उन्हीं अट्ठाईस मूलगुणोंका विस्तारके साथ प्रवचनसार-निर्दिष्ट क्रमसे वर्णन किया गया है जो कि मुनिधर्मका प्रतिपादक आचार शास्त्र होनेके नाते उसके अनुरूप ही है। इन ग्रन्थोंके संक्षेप-विस्तारका यह साम्य भी दर्शनीय है। यथाः—

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च ॥२०८॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ॥२०९
(प्रवचनसार)

पंच य महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरुद्दिट्ठा।
पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो ॥२॥
अच्चेलकमण्हाणं खिदिसयणमदंतधंसणं चेव।
ठिदिभोयणेयभत्तं मूलगुणा अट्ठवीसा दु ॥२॥
(मूलाचार, मूलगु०)

प्रवचनसारके 'वदसमिदिंदियरोधो' इस सूत्रका मूलाचारमें भाष्यरूप दृष्टिगोचर होता है। शेष सात गुणोंके नाम दोनोंमें ज्यों के त्यों ही हैं। अर्थात् ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रियनिरोध, ६ आवश्यक और १ केशलोंच, २ आचेलक्य, ३ अस्नान, ४ भूमिशयन, ५ अदन्तधावन, ६ स्थितिभोजन, और ७ एक वार भोजन मुनियोंके इन २८ मूलगुणोंका विस्तारसे विवेचन किया गया है।

(२) भावपाहुडमें कान्दर्पी, किल्विषिकी, संमोही, दानवी और आभियोगिकी इन पांच अशुभ भावनाओंके त्यागनेका साधुको उपदेश दिया गया है और बतलाया गया है कि इनके कारण देव-दुर्गति प्राप्त होती है अर्थात् किल्विषिक आदि देवोंमें उत्पन्न होना पड़ता है। भावपाहुडमें जहां यह उपदेश एक गाथा ( नं० १३ ) में दिया गया, वहां इन्हीं पांचों अशुभ भावनाओंका विस्तृत उपदेश मूलाचारके द्वितीय अधिकारमें ७ गाथाओंके द्वारा दिया गया है, जो कि उसके अनुरूप हैं। ( देखो गाथा नं० ६२ से ६८ तक )

(३) प्रवचनसारके तृतीय अधिकारमें साधुके लिए जो कर्तव्यमार्गका उपदेश दिया है, उसके साथ जब मूलाचारके अनगार भावनाधिकारका मिलान करते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रवचनसारके सूत्रोंका यहां पर भाष्यरूपसे व्याख्यान किया जा रहा है। आहार, विहार, उपधि, वसति आदिके विषयमें दोनों ही ग्रन्थोंमें एकसा वर्णन मिलता है। भेद दोनोंमें केवल संक्षेप और विस्तार का है।

(४) अहिंसादि पांच व्रतोंकी पांच-पांच भावनाओंका जैसा वर्णन मूलाचारके पंचाचाराधिकारमें गाथा नं० १४० से १४४ तक पाया जाता है, कुछ साधारणसे पाठ भेदके साथ उन्हीं शब्दोंमें वह चारित्रपाहुडके गाथा नं० ३२से ३६ तक भी पाया जाता है। यहां उदाहरणके तौर पर एक नमूना प्रस्तुत किया जाता है :—

महिलालोयण-पुव्वरदिसरण-संसत्तवसधि-विकहाहिं।
पणिदरसेहिं य विरदी य भावणा पंच वह्मह्मि ॥१ ३॥
( मूलाचार, पंचाचा० )

महिलालोयण-पुव्वरइसरण-संसत्तवसहि-विकहाहि।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि ॥३४॥
( चारित्रपाहुड )

चारित्रपाहुडमें पांच गाथाओंके द्वारा पांचों व्रतोंकी भावनाएं बताकर आगे समितियोंका संक्षिप्त वर्णन किया है। परन्तु मूलाचारमें भावनाओंका वर्णन कर उनका माहात्म्य बतलाते हुये कहा गया है कि—

जो साधु इन भावनाओंकी निरन्तर भावना करता है, उसके व्रतोंमें इतनी दृढ़ता आजाती है कि स्वप्नमें भी उसके व्रतोंकी विराधना नहीं होती। सुप्त और मूर्च्छित दशामें भी उसके व्रत अखंडित और शुद्ध बने रहते हैं। फिर जो जागृत साधु है, उसके व्रतोंकी शुद्धि या निर्मलताका तो कहना ही क्या है?

ण करेदि भावणाभाविदो हु पीलं वदाण सव्वेसिं।
साधू पासुत्तो समुदहो वि किं दाणि वेदंतो ॥१४५॥
( मूलाचार, पंचा० )

(५) चारित्रपाहुडमें पांच समितियोंका अति संक्षेपसे वर्णन किया गया है। मूलाचारके पंचाचाराधिकारमें उसका विस्तार-पूर्वक अति हृदयग्राही मार्मिक वर्णन पूरी ३० गाथाओंमें किया गया है जो कि उसके अनुरूप ही है। समितियोंका उपसंहार करते हुए लिखा है कि—

एदाहिं सया जुत्तो समिदीहिं महिं विहरमाणो दु।
हिंसादीहिं ण लिप्पइ जीवणिकाआउले साहू ॥ १२८ ॥
पउमिणिपत्तं व जहा उदएण ण लिप्पदि सिणेहगुणजुत्तं
तह समिदीहिं ण लिप्पदि साहू काएसु इरियंतो ॥१३०॥
सरवासेहि पडंतेहि जह दिढकवचो ण भिज्जदि सरेहिं
तह समिदीहिं ण लिप्पइ साहू काएसु इरियंतो ॥ १३१

अर्थात्—इन पाँचों समितियोंसे सदा सावधान साधु जीवोंसे व्याप्त प्रदेशमें विहार करते हुए भी हिंसादिके पापसे लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार स्नेहगुणयुक्त कमलिनी-पत्र जलसे अलिप्त रहता है, उसी प्रकार समिति-युक्त साधु जीवोंके समूहमें संचार करते हुए भी पापसे अलिप्त रहता है। अथवा जैसे दृढ़ कवचका धारक योद्धा युद्धमें बाण-वर्षा होने पर भी अभेद्य बना रहता है, उसी प्रकार साधु भी समितियोंके प्रभावसे जीव-समूहमें विहार करते हुए भी पापसे अलिप्त बना रहता है।

इस प्रकार विषयकी समतासे भी मूलाचार कुन्दकुन्द-रचित सिद्ध होता है।

## शब्द-समता

विषय-समताके समान मूलाचारकी कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थोंके साथ शब्द समता भी पाई जाती है। जिसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं:—

(१) मग्गो मग्गफलं तिय दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो खलु सम्मत्तं मग्गफलं होइ णिव्वाणं ॥ ५ ॥
( मूला०, पंचाचाराधिकार )

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणं समक्खादं।
मग्गो मोक्ख उवायो तस्स फलं होइ णिव्वाणं ॥ २ ॥
( नियमसार )

(२) पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदाप्पप्पसंसविकहादी।
वज्जित्ता सपरहियं भासासमिदी हवे कहणं ॥ १२ ॥
( मूलाचार, मूलगुणाधिकार )

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं।
परिचित्ता सपरहिदं भासासमिदी वदं तस्स ॥ ६२ ॥
( नियमसार )

(३) एगंते अच्चित्ते दूरे गूढे विसालमविरोहे।
उच्चारादिच्चाओ पदिठावणिया हवे समिदी ॥१५॥
(मूलाचार, मूलगुणाधिकार)

पासुकभूमिपदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठा समिदी हवे तस्स ॥ ६५ ॥
( नियमसार )

(४) रागी बंधइ कम्मं मुच्चइ जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवएसो समासदो बंधमोक्खाणं ॥ ५० ॥
( मूलाचार, पंचाचाराधिकार )

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५० ॥
( समयसार )

ऊपरके उद्धरणोंमें नाम मात्रका ही साधारण सा शब्द-भेद है इनकी शब्द-समता दोनों ग्रन्थोंके एककर्तृत्वको पुष्ट करती है।

इसके अतिरिक्त मूलाचारका द्वादशानुप्रेक्षा नामक आठवां अधिकार तो कुन्दकुन्द-कृत 'बारस अणुवेक्खा' नामक ग्रन्थके साथ शब्द और अर्थकी दृष्टिसे कितना साम्य रखता है, यह पाठकोंको स्वयं पढ़ने पर ही विदित हो सकेगा। बहुभाग गाथाएँ दोनोंकी एक हैं। भेद केवल इतना ही है कि एकमें यदि किसी अनुप्रेक्षाका संक्षेपसे वर्णन है, तो दूसरेमें उसीका कुछ विस्तारसे वर्णन है। बाकी मंगलाचरण और अनुप्रेक्षाओंके नामोंका एक ही क्रम है, जो कुन्दकुन्दकी खास विशेषता है। इस प्रकरणके अवतरणोंको लेखके विस्तार-भयसे नहीं दिया जारहा है।

## मूलाचार और नियमसार

मूलाचारके विषयका नियमसारके साथ कितना सादृश्य है यह दोनोंके साथ-साथ अध्ययन करने पर ही विदित हो सकेगा। यहाँ दो-एक प्रकरणोंकी समता दिखाई जाती है।

(१) मूलाचारके प्रथम अधिकारमें जिस प्रकार और जिन शब्दोंमें पाँच महाव्रत और पाँच समितियोंका वर्णन किया गया है, ठीक उसी प्रकार और उन्हीं शब्दोंमें नियमसार के भीतर भी वर्णन पाया जाता है। यही नहीं, बल्कि कुछ गाथाएँ तो ज्यों की त्यों मिलती हैं। इसके लिए मूलाचार-के प्रथम अधिकारकी गा० नं० ५ से १५ तकके साथ नियमसारकी गा० नं० ५६ से ६५ तकका मिलान करना चाहिए।

(२) दोनों ही ग्रन्थोंमें तीनों गुप्तियोंका स्वरूप एक सा ही पाया जाता है। यहाँ तक कि दोनोंकी गाथायें भी एक हैं। (देखिए नियमसार गा० नं० ६९–७० और मूलाचार गा० नं० ३३२–३३३)

(३) दोनों ही ग्रन्थोंकी जो गाथाएँ शब्दशः समान हैं, उनकी तालिका पृथक् गाथा-समता-सूचीमें दी गई है। उसके अतिरिक्त अनेक गाथाओंमें अर्ध-समता भी पाई जाती है। लेख-विस्तारके भयसे उन्हें यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

(४) मूलाचारके षडावश्यकाधिकारकी 'विरदो सव्व-सावज्जं' (गा० नं० २३) से लेकर 'जो दु धम्मं च सुक्कं च' (गा० नं० ३२) तककी गाथाएँ नियमसारकी गा० नं० १२५ से १३३ तक कितनी समता रखती हैं यह पाठकोंको मिलान करने पर ही ज्ञात होगा। भेद केवल इतना ही है कि इन गाथाओंका उत्तरार्द्ध एक सा होनेसे मूलाचारमें दो गाथाओंके पश्चात् पुनः लिखा नहीं गया है। जब कि नियमसारकी प्रत्येक गाथामें वह दिया हुआ है। गाथाओंकी यह एकरूपता और समता आकस्मिक नहीं है। इस प्रकरणकी जो गाथाएँ एकसे दूसरेमें भिन्न पाई जाती है, वे भिन्न होने पर भी अपनी रचना-समतासे एक–कर्तृत्वकी सूचना दे रही हैं।

## गाथा-साम्य-तालिका

मूलाचारकी जो गाथाएँ कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थोंमें ज्यों की त्यों पाई जाती हैं, उनकी सूची इस प्रकार है *:—

| मूलाचा० गा० नं० | कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थ | गाथा, नं० |
|---|---|---|
| १२,१५,४५,४६ | नियमसार | ५२,६५,६६ १०० |
| ४७,४८,३६,४२ | ,, | १०१,१०२,१०३ १०४, |
| १०४ | ,, | १०५ |
| २०१ | चरित्रपाहुड | ७ |
| २०३ | समयसार | १३ |
| २२६ | बारसअणुपेक्खा | ३५ |
| २३१ | पंचास्तिकाय | ७५ |
| ३३२ | नियमसार | ६६ |
| ३३३ | ,, | ७० |
| ५ ५,५२६ | ,, | १४२,१२६ |
| ६६६ | बारसअणुपेक्खा | १४ |
| ७०१,७०२ ७०६ | ,, | २ ,२३ ३६ |
| ८४१ | दर्शनपाहुड | १७ |
| ६६६ | पंचास्तिकाय | १४८ |
| ११६१ | बोधपाहुड | ३५ |
| ११६७ | ,, | ३३ |

जिस प्रकार मूलाचारकी कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थोंके साथ मंगलाचरण, प्रतिज्ञा विषय आदिके साथ समता पाई जाती है, उसी प्रकार मूलाचार-गत अधिकारोंके अन्तमें जो उपसंहार वाक्य हैं वे भी कुन्दकुन्दके अन्य ग्रन्थोंके उपसंहार वाक्योंसे मिलते जुलते हैं। उदाहरणके तौर पर कुछ उद्धरण नीचे दिए जाते हैं:—

* तालिकाके अंक हिंदी मूलाचारके अनुसार दिए गये हैं।

(१) होऊण जगदि पुज्जो अक्खयसो क्खं लहइ मोक्खं ।
( मूलाचार, गुणा० ३६ )
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि ।
( पंचास्तिकाय १७६
(२) जो उवजुंजदि णिच्चं सो सिद्धिं जादि विसुद्धप्पा ।
( मूला० षडाव० १६३ )
अत्थे ठाहिदि चेया सो होहि उत्तमं सोक्खं ।
( समयसार ४१५ )
(३) तह सव्वलोगणाहा विमलगदिगदा पसीदंतु ।
( मूलाचार बारसअणु० ७६ )
सिग्घं मे सुदलाहं जिणवरवसहा पयच्छंतु ।
( श्रुतभक्ति ११ )
(४) जो पालेदि विसुद्धो सो पावदि सव्वकल्लाणं ।
( मूलाचार. शीलगु० १२५ )
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं ।
( लिंगपाहुड २२ )
(५) एवं मए अभिथुदा अणगारा गारवेहिं उम्मुक्का ।
धरणिधरेहिं य महिया देंतु समाधिं च बोधिं च ॥
( मूलाचार अनगारभा० १२५ )
एवं मएऽभित्थुया अणयारा रागदोसपरिसुद्धा ।
संघस्स वरसमाहिं मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥
( योगिभक्ति, २३ )

अन्तिम उद्धरणका सादृश्य तो दोनों रचनाओंकी एक आचार्य-कर्तृताका स्पष्ट उद्घोष कर रहा है।

उपर्युक्त तुलनासे पाठक स्वयं ही इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि मूलाचारके रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द ही हैं।

# मूलाचारके कर्तृत्व पर नया प्रकाश

मूलाचार आ० कुन्दकुन्द-रचित है, यह बात अनेकांत के विगत दो अंकों द्वारा स्पष्ट कर दी गई है। फिर भी विद्वान् लोग इस विषयको स्पष्ट उल्लेखों द्वारा पुष्ट करनेके प्रमाणोंके लिए उद्योग-शील रह रहे हैं। हमने इस विषयमें विशेष जानकारीके लिए कुछ पुराने शास्त्रभंडारों के व्यवस्थापकोंको छान-बीनके लिए प्रेरणा की। जिसके फलस्वरूप मूडबिद्री स्थित श्री० पं० लोकनाथजी शास्त्री सरस्वती-भंडारके व्यवस्थापक श्री पं० एस० चन्द्रराजेन्द्र शास्त्रीने वहांके जैनमठके मूलाचारकी ताड़पत्रीय प्रतिका एक उल्लेख हमारे पास भेजा है, जिससे यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मूलाचार आ० कुन्दकुन्द-रचित ही है।

मूलाचारके ताड़पत्रीय ग्रन्थ नं० ५६ के अन्तमें वसुनन्दी टीका समाप्त होनेके अनन्तर यह निम्न-लिखित पद्य पाया जाता है:—

मूलाचाराख्यशास्त्रं वृषभजिनवरोपज्ञमर्हत्प्रवाहा—
दायातं कुन्दकुन्दाह्वयचरमलसच्चारणैस्सुप्रणीतम् ।
तद्व्याख्यां वासुनन्दीमवुधविलिखनावाचनानायासभक्त्या,
(?) संशोध्याध्येतुमर्हामिकृतयति कृति (?)·····॥२०५॥

इस पद्यके चतुर्थ चरणका आधा भाग त्रुटित है' एवं दो एक स्थल संदिग्ध हैं, तथापि इसमें इतना तो स्पष्ट ही लिखा है कि—'यह मूलाचार नामक शास्त्र आदि जिनेन्द्र वृषभनाथके द्वारा उपदिष्ट है और वह परम्परा-प्रवाहसे आकर आ० कुन्दकुन्दको प्राप्त हुआ। उसे दिव्य चारणऋद्धि धारकोंमें अन्तिम आ० कुन्दकुन्दने रचा। उसकी व्याख्या आ० वसुनन्दिने की, उसमें जो प्रमादजन्य भूलें हुई हों, उन्हें शास्त्र-वेत्ता संशोधन करके अध्ययन करें। ॥ २०५ ॥

इस पद्य-प्रमाणके उपलब्ध होनेसे यह और भी दृढ़ हो जाता है कि मूलाचार आ० कुन्दकुन्दके द्वारा ही रचा गया है।

—हीरालाल शास्त्री